R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2021-23

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-22, अङ्क-7 जुलाई 2022 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

कल्पद्रुम यह समवसरण है, भव्यजीव का शरणागार;
जिनमुख घन से सदा बरसती, चिदानन्दमय अमृत धार॥

धर्म का फल

शरीर के रोगों को मिटाना धर्म का कार्य नहीं है। पूर्व के पुण्य हों तो शरीर निरोगी होता है। धर्म के फल से शरीर का रोग मिटता है – ऐसा माननेवाला धर्म के स्वरूप को समझा ही नहीं है। पुण्य शुभपरिणामों से होता है और धर्म आत्मा का शुद्धस्वभाव प्रगट करने से होता है, उसकी उसे खबर नहीं है। सनत्कुमार चक्रवर्ती को दीक्षा लेने के पश्चात् (उन महान धर्मात्मा मुनि को) कई वर्षों तक महान रोग लगा रहा, तथापि शरीर पर धर्म का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। धर्म से शरीर निरोगी रहता है – ऐसा नहीं है, किन्तु धर्म के फल में तो आत्मा में अपूर्व आनन्द का अनुभव प्रगट होता है और पुण्य तथा शरीरादि का संबंध ही नहीं होता। मोक्षमार्ग में पुण्य का भी निषेध है, उसके बदले इस समय तो लोग धर्म के नाम से अंधाधुंधी चला रहे हैं और कहते हैं कि पुण्य करो, उससे मनुष्य तथा देवगति प्राप्त होगी और तत्पश्चात् परम्परा से मोक्ष होगा। आत्मा को समझने की तो कहीं बात ही नहीं आई। आत्मा को भूलकर ऐसी बातें (जीव राग-द्वेष का कर्ता, उसके फल का भोक्ता ऐसी काम, भोग, बंधन की कथा) तो जीव ने अनंत बार सुनी है, इसलिए श्री आचार्य भगवान कहते हैं कि हम तुझे आत्मा के एकत्व-विभक्त स्वभाव की बात सुनाते हैं, जड़ के संयोग की रुचि छोड़, पुण्य से धर्म नहीं है....पुण्य मेरा, शुभभाव करते-करते धीरे-धीरे धर्म होगा – ऐसी विषैली मान्यता का अर्थात् राग-द्वेष-अज्ञान भाव का, वीतराग के वचन विरेचन करा देते हैं...आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से विरुद्धभाव को कोई धर्म कहे तो वह विकथा है।

– समयसार प्रवचन से

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-22, अङ्क-7 (वी.नि.सं. 2548; वि.सं. 2079) जुलाई 2022

दिव्यध्वनि वीरा...

दिव्यध्वनि वीरा खिराई आज शुभ दिन,
धन्य-धन्य सावन की पहली है एकम्।।टेक।।
आतम स्वभावं परभाव भिन्नम्
आपूर्णमाद्यंत-विमुक्तमेकम्।।

मेरे प्रभु विपुलाचल पर आये, वैशाखी दशमी को घातिया खिपाये;
क्षण में लोकालोक लखाये, किन्तु न प्रभु उपदेश सुनाये।
वाणी की काललब्धि आई नहीं उस दिन;
धन्य-धन्य सावन की पहली है एकम्।।1।।

इंद्र अवधिज्ञान उपयोग लगाये, समवसरण में गणधर न पाये;
इन्द्रभूति गौतम में योग्यता लखाये, वीर प्रभु के दर्शन को आये।
काललब्धि लेकर के आई आज गौतम;
धन्य-धन्य सावन की पहली है एकम्।।2।।

मेरे प्रभु ॐकर ध्वनि को खिराये, गौतम द्वादश अंग रचाये;
उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सत् समझाये, तन चेतन भिन्न-भिन्न बताये।
भेद-विज्ञान सुहायो आज शुभ दिन;
धन्य-धन्य सावन की पहली है एकम्।।3।।

य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं, स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यम्;
विकल्प जाल च्युत शांतचित्तास्त एव साक्षातमृतं पिबंति।
स्वानुभूति की कला सिखाई आज शुभदिन;
धन्य-धन्य सावन की पहली है एकम्।।4।।

साभार : मंगल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
स्व. श्री पवन जैन, अलीगढ़

सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन

सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

●●

इस अङ्क के प्रकाशन में
सहयोग—
श्री चतरसेन जैन
की स्मृति में
श्री अमित चतरसेन जैन
88 टैगोर विला,
टैगोर कॉलोनी,
देहरादून-248001
(उत्तराखण्ड)

●●

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

क्या - कहाँ

भगवान 'सन्मति' की 5
तीर्थंकर महावीर 8
मोक्ष का एक ही उपाय 11
श्री समयसार नाटक 16
अकम्पनाचार्य की अडिगता 22
आत्मा कैसे ज्ञात हो ? 23
श्रुत परम्परा एवं 25
प्रेरक-प्रसंग 27
जिस प्रकार-उसी प्रकार 28
समाचार 29

वीरशासन पर्व पर विशेष

भगवान 'सन्मति' की अध्यात्म 'देशना'

भगवान सन्मति (महावीर) ने अपनी देशना में कहा कि जब तक प्राणी इन भौतिक पदार्थों से अलग अपनी आत्मशक्ति पर लक्ष्य नहीं देगा, तब तक उसका कल्याण असम्भव है। आत्मा की सन्मुखता ही आत्मा को परमात्मत्व की ओर ले जाती है। उस आत्मा की सन्मुखता लाने को अध्यात्म विज्ञान का समझना परमावश्यक है। उसी अध्यात्म विज्ञान की थोड़ी सी झलक यहाँ देखिये।

द्रव्य की स्वतन्त्र सत्ता

अनादि कालीन लोकाकाश में षट्द्रव्यों का सम्मेलन होते हुए भी प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने स्वभाव को नहीं छोड़ रहा है किन्तु जीव और पुद्गल अपनी-अपनी वैभाविकीय शक्ति के वैभाविक परिणमन द्वारा एक दूसरे का निमित्त बनकर भी अपनी स्वाभाविक सत्ता को नहीं छोड़ता। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारा वर्तमान पर्याय का जीवन ही बता रहा है कि हम स्वयं को भूलकर व पुद्गल का निमित्त पाकर अनादि काल से वैभाविक परिणमन करते चले आ रहे हैं। उस पर भी हमारा एक भी प्रदेश पुद्गलरूप नहीं हुआ। इसी तरह से पुद्गल का भी एक प्रदेश हमारे आत्मीय प्रदेशरूप नहीं हुआ। इससे निष्कर्ष यह निकला कि हम कितने भी वैभाविक प्रवाह में बहते चले जावें, परन्तु हम अपना असंख्यात प्रदेशीय अस्तित्व को मिटा नहीं सकते। इतना होते हुए क्यों नहीं हम अपने स्वाभाविक परिणमन में स्थिर होते हैं ? इसी भूल को सुधारने का 'सन्मति भगवान सन्देश' देते हैं कि हे भाई ! तू इस दुर्लभ चिन्तामणिरत्न के समान मनुष्य पर्याय को पाकर वृथा मत खो। हम भी तुम्हारे समान अनादि काल से इस वैभावकीय परिणमन में बहते चले आये हैं। परन्तु जब हमने अपना स्वाभाविक परिणमन को सम्हाला तब ही हम भगवान महावीर बनें। इससे हे संसारी दुखी 'जीव' तू भी अपनी स्वाभाविक

सम्पत्ति को सम्हाल कर हमारे समान भगवान और सच्चा महावीर बन जा। इससे कहा है—

जो जन सदा पराये मुख को, खड़े-खड़े ही तकते हैं।
उनके हाथ न कुछ भी आता, और न कुछ कर सकते हैं॥

सत्य प्रकाश

कितना सुन्दर भाव है जो कि सत्यरूप से हमारे जीवन पर घटित होता है। हमने भगवान महावीर की कितनी जयन्ती मनाईं और कितने निर्वाण कल्याणक मनाये। किन्तु हमारी वैभाविकीय जीवन की बागडोर रंचमात्र न मुड़ी। जिस प्रकार म्युनिसिपैलिटी का मीलवाला पत्थर इस बात की सूचना देता है कि तुम १०० या २०० मील पर आ गये किन्तु वह पत्थर जहाँ का तहाँ है। इससे निष्कर्ष यह निकला कि जब तक हम भगवान महावीर की देशना को न अपनावेंगे तब तक अनन्ती पर्यायों में दुःखी होते चले आये और अब भी दुःखी होते चले जावेंगे। इससे हे दुःखी प्राणी! अपने जीवन पर सत्य प्रकाश डाल, अर्थात् अपने स्वाभाविक परिणमन में रम जा। वह इस प्रकार कि हम अपने मन, वचन, काय को अपने स्वरूप के सम्हालने की ओर लगा देवें, जिस प्रकार भगवान महावीर ने लगाया। पंच पाप कुभावों रूपी ईंधन को रत्नत्रय रूपी अग्नि प्रज्वलित करते हुए, अपने आत्मस्वरूपी सुवर्ण को तपाया, जिससे निर्मलता प्रगट हुई जिसमें कल्पान्तकाल तक कर्मरूपी कालिमा नहीं लग सकती। कोई कहे कि भगवान महावीर के समान साक्षात् रत्नत्रय तो क्या हम भी मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं? अहो भव्यजन! यदि आप साक्षात् श्रेणी मांडकर मोक्ष नहीं जा सकते तो भी इतनी श्रद्धा तो लाओ कि वास्तव में हमारी आत्मा भौतिक वातावरण में निरन्तर मग्न रहकर अपनी आत्मीय स्वाभाविक परिणति को भूली हुई है इतनी सुधि आते ही हम भी भगवान महावीर के समान श्रद्धा और ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, अब रहा चारित्रगुण। इसको भी शक्ति प्रमाण धारण करें।

शुद्धता से परमात्मत्व की ओर

इतना बीज बो-लेने पर हमारी आत्मा पृथ्वी पर एक न एक दिन, इस पर्याय में हमारा ही अविनश्वर मोक्षरूपी फल भगवान महावीर के समान पल्लवित होगा। उस अमर फल को पा करके कल्पान्त काल के लिये सुखी हो जावेंगे। यह ही विश्व के लिये भगवान महावीर की देशना है। इस प्रकार श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र पर अवलम्बित होना ही हमारा सच्ची जयन्ती का मनाना है, यदि एक बार भी हमारी पड़ी मंझधार नैया किनारे पर लग जाये तो हम भी भगवान महावीर बन जावेंगे, इसमें तनिक भी सन्देह और आश्चर्य करने की गुंजायश नहीं है। कहा भी है—

शुभ कर्म योग सुधार आया, पार हो दिन जात है।
'नायक' धरम की नाव बैठो, शिवपुरी कुशलात है॥

●●

अगस्त 2022 माह के मुख्य जैन तिथि-पर्व

3 अगस्त – श्रावण शुक्ल षष्ठी
भगवान नेमिनाथ जन्म-तप कल्याणक
4 अगस्त – श्रावण शुक्ल सप्तमी
मोक्ष सप्तमी
भगवान पार्श्वनाथ निर्वाण कल्याणक
5 अगस्त – श्रावण शुक्ल **अष्टमी**
11 अगस्त – श्रावण शुक्ल **चतुर्दशी**
षोड्शकारण व्रत प्रारम्भ
12 अगस्त – श्रावण शुक्ल पूर्णिमा
भाद्रपद कृष्ण एकम्
वात्सल्य पर्व
भगवान श्रेयांसनाथ निर्वाण कल्याणक
18 अगस्त – भाद्रपद कृष्ण सप्तमी
भगवान शांतिनाथ गर्भ कल्याणक
19 अगस्त – भाद्रपद कृष्ण **अष्टमी**
20 अगस्त – भाद्रपद कृष्ण नवमी
रोहिणी व्रत
26 अगस्त – भाद्रपद कृष्ण **चतुर्दशी**
27 अगस्त – भाद्रपद कृष्ण अमावस्या
28 अगस्त – भाद्रपद शुक्ल एकम्
रोहिणी व्रत
31 अगस्त – भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी
दशलक्षण व्रत प्रारम्भ
पुष्पांजलि व्रत प्रारम्भ

तीर्थंकर महावीर

महावीर, महावीर थे, पर आत्मा से, शरीर से नहीं। शरीर उनका सब तीर्थंकरों में छोटा था। आयु भी कम थी, पर आत्मभावना बड़ी थी। इतनी बड़ी कि उन्होंने राजपाट ठुकरा दिया, आत्मसाधना की उमंग में लौकिक सुखों से मुँह मोड़कर-वन की राह पकड़ी, उन्होंने लोक सुखों से मुँह मोड़ा था, पर लोक सेवा से नहीं, सेवा का अधिकार पाने के लिये भी उन्होंने लोक से याचना नहीं की। वे भिक्षुक नहीं, महाभिक्षुक थे, पर जिस चीज़ को ठुकरा कर वे भिक्षुक बने, उसे पुनः किस मुँह से माँगते।

महावीर बनने का रहस्य

वे राज्यतंत्र में जन्मे थे और उसमें यह अधिकार जन्म से ही प्राप्त था। प्रजातंत्र में यही अधिकार 'जनमत' (वोट) के रूप में जन-जन से संग्रह किया जाता है, पर महावीर की आस्था न तो प्रजातंत्र में थी और न राज्यतंत्र में, वे आत्मतंत्र के उपासक थे, और इसलिए आत्मसाधना को उन्होंने लोकसेवा की कसौटी बनाया, उस पर अपने आपको कसा, तप की आग में 'स्व' को इतना गलाया कि उनका हृदय विश्वकल्याण की व्यथा से भर गया, अब उन्हें वह विश्वदृष्टि मिली जो 'स्व' से विगत थी। क्योंकि उसका 'अहं' साधना में गल चुका था, दृष्टि की इस समता में उन्हें लगा कि जिसे अभी तक उन्होंने अपना समझा था, उसमें भी परायापन था और जिसे वे पराया समझ बैठे थे, उसमें अपनापन है। व्यक्ति जितना अहं को काटता है उतना ही 'पर' के बंधनों से छूटता है और जितना ही बंधनमुक्त होता है, उतनी ही उसे अपनी व्यापक अनुभूति होने लगती है, तब उसे 'स्व' में भी 'पर' और पर में भी 'स्व' दिखाई पड़ने लगता है। जीवन की व्यापक अनुभूति में महावीर बनने का रहस्य बीज निहित है।

वह संक्रांति काल

साधना पथ पर वह असंग चले थे और अब कर्म पथ पर भी उन्हें असंग ही चलना था। वह उनके जीवन का पूर्वार्द्ध था क्योंकि वे महावीर

बन चुके थे। वह उनके जीवन का उत्तरार्ध था क्योंकि तीर्थंकर बनने की उनकी साध अभी अधूरी थी। और वे पुन: उस ओर मुड़े कि जिससे मुड़ कर आए थे, सहस जिज्ञासा लेकर जब वे संसार छोड़कर आये थे तो संसार उनके साथ था, और अब सहज समाधान लेकर वे संसार में प्रवेश करने लगे तो संसार उनसे छूट चुका था। उनके जाने पर जन-परिजन खिन्न थे, और अब उनके आने पर प्रसन्न थे। स्वयं महावीर के मन में कोई द्विधा नहीं थी। वे लगातार ढ़ाई युगों तक भारतीय जनपदों में घूमते रहे। ये युग भारतीय इतिहास के संक्रांतियुग थे। बड़े जनपद छोटे जनपदों को निगल कर अपना कलेवर बढ़ा रहे थे।

राज्यों में सार्व भौम सत्ता स्थापना के लिये छीना झपटी चल रही थी, समाज अनेक आर्थिक निकायों में बँट गया था। आर्य अनार्य की पुरानी भावना जन्मगत ऊँच-नीच के रूप में मूर्त हो रही थी, आध्यात्मिक जीवन में कई विचारधारायें प्रवाहित थीं। महावीर ने नानात्व के प्रवाह में तीर्थ बाँधने का प्रक्रम किया, ऐसा कि पानी ऊँचाई के साथ जग-जीवन के तल को छूता था। वर्णभेद वहाँ नहीं था, और सबको आत्म स्वातंत्र्य के साथ आत्म विकास का पूरा अवसर प्राप्त था। उनके तीर्थ निर्माण की सामग्री पुरानी थी, पर बाँधने की कला नई थी, जो कुछ उन्हें पुरखों से मिला और जो कुछ जीवन के चारों ओर पाया, उस सबका उन्होंने सम्बन्ध किया, वे पार्श्व परम्परा में उत्पन्न हुए थे, पर उसकी लीक पर आँखें बन्द करके नहीं चले, चलते तो तीर्थ कैसे बाँधते ? वह तो प्रवाह में बह जाना होता।

महावीर का सर्वोदय तीर्थ

महावीर आत्मसाधक थे, पर लोक-समस्याओं की अपेक्षा उन्होंने नहीं की। उनके जीवन और आदर्शों पर सामयिक परिस्थिति की पूरी छाप है, उन्होंने जन्मूलक वर्ण व्यवस्था को नहीं माना, वे योग्यतामूलक समाज व्यवस्था में विश्वास करते थे, क्योंकि व्यक्ति की ऊँचाई का आधार उसकी योग्यता है न कि जन्म। भगवान बुद्ध उनके सहकर्मा थे। यज्ञों की हिंसा का

निषेध ब्रह्मोपसना आदि के लिये महावीर को ही पूरा श्रेय नहीं भी दिया जाये तो भी उसका महत्त्व कम नहीं होता, उनका महत्व इसमें है कि उन्होंने लोक जीवन के असाधारण प्रवाह में साधारण तत्त्वों से नये तीर्थ की रचना की। वह तीर्थ सर्वोदय तीर्थ था। जिसे उन्होंने किसी नदी के किनारे या गिरिशिखर पर खड़ा नहीं किया, वह तो स्वयं व्यक्ति में हैं। उन्हीं ने अपने जीवन से यही सिद्ध किया है, व्यक्ति ही तीर्थ है और तीर्थंकर भी। उसके निर्माण की उपयुक्त भूमिका है योग्यतामूलक समाज व्यवस्था। इसीलिए उन्हें वर्णमूलक समाज का विरोध करना पड़ा। अपने जीवन में अपरिग्रह को उन्होंने जिस कड़ाई से अपनाया उससे उस युग की संचय की उग्र लालसा की झलक मिलती हैं, क्योंकि कोई महापुरुष उन्हीं बातों को अपने जीवन में ढालता है, जिन्हें समकालीन समाज हेय समझने लगता है। उपनिषदों की ब्रह्मजिज्ञासा अहिंसामूलक थी, और बाह्य उपासना की अपेक्षा आत्मचिन्तन की ओर उनका रुझान था, पर अभी मनुष्य के नियम का सूत्रब्रह्म के अधीन था, उन्होंने मनुष्य के अधीन कर दिया। इस असीम अधिकार के हाथ लगने से मनुष्य में अहं बढ़ना स्वाभाविक है, पर जब वह अहंवादी बनने लगता है तो वह कर्तव्य से जाता है।

लोक सेवा की कसौटी

महावीर की विचार धारा प्राणी मूलक थी, भारतीय संस्कृति में भी विचारों की एकता की अपेक्षा उनके समन्वय का अधिक महत्व रहा है, विचारों के समन्वय को ही स्याद्वाद कहते हैं। सत्य को समग्र रूप से जानने के लिये जब हम उसे कई दृष्टियों से देखते हैं तो ज्ञान में नम्रता आती है और मन में दूसरे के विचारों के प्रति आस्था जागती है, संक्षेप में उनके कथन के अनुसार समाज-रचना का आधारभूत तत्त्व योग्यता हैं, जन्म नहीं, व्यक्ति का आदर्श आकिंचनता है, संचय नहीं, और लोक-सेवा की कसौटी विचारों का समन्वय है, एकता नहीं।

.....शेष पृष्ठ 21 पर

मोक्ष का एक ही उपाय

[भगवती प्रज्ञा ही मोक्ष का साधन है, आत्मा से भिन्न साधन का अभाव है]

मोक्ष अधिकार में मोक्ष का उपाय दर्शाते हुए आचार्य प्रभु कहते हैं कि आत्मा के स्वभाव को और बन्ध भाव को—दोनों को उनके लक्षणों द्वारा भिन्न-भिन्न पहिचानकर उन्हें पृथक् करना ही एक नियम से मोक्ष का उपाय है और उसका साधन आत्मा से अभिन्न ऐसी भगवती प्रज्ञा ही है। आत्मा के मोक्ष का साधन आत्मा से भिन्न नहीं है। जिसप्रकार मोक्ष आत्मा से भिन्न नहीं है, उसीप्रकार उसका साधन भी आत्मा से भिन्न नहीं है। भाई! तेरे मोक्ष का साधन अंतर में तेरे आत्मा के ही आश्रित है... इसलिये आत्मा की ओर उन्मुख होकर स्वाश्रय का सेवन कर!

प्रश्न:—मोक्ष का कारण क्या है ?

उत्तर:—आत्मा और बंध को पृथक् करना, वह एक ही मोक्ष का कारण है। इसके सिवा बंधन के प्रकार आदि को जानता रहे अथवा उनका चिंतन करता रहे कि—'मुझे बंधन से छूटना है-छूटना है' तो उससे कहीं बंधन से छुटकारा नहीं होता। बंधन से छुटकारा तो इस एक ही उपाय से होता है कि आत्मा का स्वभाव और बंधभाव—इन दोनों को पृथक् करे।

प्रश्न:—यह एक ही मोक्ष का कारण क्यों है ?—इसप्रकार मोक्ष का जिज्ञासु होकर उसका स्वभाव समझने के लिये जो जीव प्रश्न पूछता है, उसे आचार्यदेव समझाते हैं कि—

रे जानकर बंधनस्वभाव, स्वभाव जान जु आत्म का।
जो बंध में हि विरक्त होवें, कर्म मोक्ष करें अहा॥

अबंधस्वभावी, चैतन्यस्वभाव से भरपूर भगवान आत्मा तथा दूसरी ओर विकाररूप ऐसे बंधभाव—इन दोनों का स्वभाव अत्यंत भिन्न है। ऐसी भिन्नता को जो जानता है, वह निज स्वभाव की ओर उन्मुख होता हुआ बंधों से विरक्त होता है—अर्थात् वह कर्मों से मुक्त होता है। इसके सिवा अन्य

रीति से मुक्ति नहीं होती—यह एक ही मोक्ष का उपाय होने का नियम है।

आत्मा तो निर्विकार चैतन्य चमत्कार से भरपूर है। चौंसठ ऋद्धियों में केवलज्ञानादि ऋद्धि आती है, वह आत्मा की सच्ची ऋद्धि है। स्वरूप की साधना करते हुए मुनियों को बाह्य में भी रसऋद्धि आदि अनेक ऋद्धि-लब्धियाँ प्रगट होती हैं, परंतु चैतन्य चमत्कार के समक्ष जगत के किसी चमत्कार की या ऋद्धि की महत्ता उनको नहीं है। जिसमें निर्दोषता और वीतरागता भरी है—ऐसा आत्मा, बंध भावों से अत्यंत भिन्न है। रागादि दोष, वह तो बंध का स्वभाव है, वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। आत्मा का स्वभाव तो चैतन्यस्वभाव से ही सर्वत्र परिपूर्ण है।

अरे जीव! एक बार ज्ञान को अंतर की गहराई में उतारकर ऐसे विभाग तो कर। तेरे चैतन्य चमत्कार में विकार का प्रवेश नहीं है, परंतु अनंत गुण तथा केवलज्ञानादि अनंत ऋद्धियाँ तेरे चैतन्य चमत्कार में समा जाती है। जगत को बाह्य चमत्कारों की महिमा आती है कि—सोमासती के शील के प्रताप से सर्प का हार बन गया, भगवान की स्तुति करने से कारागृह के ताले टूट गये—इत्यादि; परंतु चैतन्य के गुप्त चमत्कार में अपार स्वभाव सामर्थ्य भरा है—ऐसे अपने चमत्कार की महिमा अपने को नहीं आती। स्वभाव क्या वस्तु है और परभावरूप बंधभाव किस प्रकार भिन्न है, उसे जान ले तो बंधन से विमुख होकर स्वभावोन्मुख हो और मोक्ष का उपाय प्रगट करे।

स्वभाव और बंधभाव को भिन्न जानकर स्वभावोन्मुख हो तो बंधन से छूट जाये; परंतु यदि स्वभावोन्मुख न हो और बंध के विचार में ही रुका रहे तो बंधन से नहीं छूटेगा। जो जीव बंध भाव को और आत्मस्वभाव को सचमुच भिन्न जान ले, वह जीव बंध से विमुख होकर स्वभावोन्मुख हुए बिना नहीं रहता। यदि ऐसा न हो तो उसने वास्तव में दोनों को भिन्न जाना ही नहीं है—भेदज्ञान किया ही नहीं है।

देखो, यह निश्चय मोक्षमार्ग की बात है, नियम से मोक्ष का उपाय क्या है, उसकी यह बात है। आत्मस्वभाव को बंधन से भिन्न जानना, भिन्न श्रद्धा

करना और भिन्न परिणमित होना —ऐसा जो द्विधाकरण, वह एक ही नियम से मोक्षकारण है, अन्य कोई मोक्षकारण नहीं है।

अब मुमुक्षु शिष्य पूछता है कि—अहो! आपने द्विधाकरण को ही मोक्ष का साधन कहा, तो उस द्विधाकरण का साधन क्या? किस साधन द्वारा आत्मा और बंध को पृथक् किया जाये? ऐसा पूछनेवाले शिष्य को आचार्यदेव साधन बतलाते हुए कहते हैं कि—आत्मा और बंध को भिन्न करने में भगवती प्रज्ञा ही साधन है; क्योंकि अन्य किसी भिन्न साधन का अभाव है:—

छेदन करो जीवबंध का तुम नियत निजनिज चिह्न से।
प्रज्ञा-छैनी से छेदते दोनों पृथक् हो जाय है॥२९४॥

देखो, यह मोक्ष के उपाय की रीति। मोक्ष का साधन आत्मा से बाहर नहीं है। जो जीव मुमुक्षु होकर, शोधक होकर आत्मा के मोक्ष का साधन ढूँढ़ता है, उसकी गंभीर विचारणा करता है, उसे आत्मा के मोक्ष का साधन कहीं बाहर दिखायी नहीं देता, परंतु आत्मा में ही मोक्ष का साधन है और वह साधन 'प्रज्ञा' है। प्रज्ञा अर्थात् आत्मा और बंध दोनों के स्वलक्षणों को भिन्न-भिन्न जाननेवाला ज्ञान। दोनों को भिन्न जानकर वह ज्ञान आत्मस्वभाव में तो तन्मय होकर और रागादि बंधनभावों से पृथक् होकर परिणमित होता है। ऐसी ज्ञान परिणतिरूप से भगवती प्रज्ञा, वही मोक्ष का साधन है।

देखो, यह मोक्ष के साधन की मीमांसा! मीमांसा अर्थात् गहरी जाँच, गंभीर विचारणा। जो राग को या बाह्य क्रिया को मोक्ष का साधन मानते हैं, वे तो गंभीर विचारणा से रहित हैं। अरे भाई! तू जरा विचार तो कर कि आत्मा की शुद्धि का साधन अशुद्धता कैसे होगा? आत्मा की शुद्धि का साधन आत्मा से बाहर कैसे होगा? राग तो उदयभाव है और मोक्ष तो क्षायिकभाव है; फिर उदयभाव क्षायिकभाव का साधन कैसे होगा? जो मुमुक्षु होकर मोक्ष के साधन को ढूँढ़ते हैं—विचारते हैं, उन्हें तो राग में मोक्ष का साधन भासित नहीं होता; परंतु राग को आत्मा से भिन्न करनेवाली जो प्रज्ञाभगवती

प्रज्ञा—वही मोक्ष का साधन अंतरंग में प्रतिभासित होता है।

व्यवहारकथन आये वहाँ भी मुमुक्षु उलझन में नहीं पड़ता कि—यह भी मोक्ष का साधन होगा? वह जानता है कि निश्चय से मोक्ष का साधन वही होता है कि जो मेरे स्वभाव से अभिन्न हो, क्योंकि निश्चय से भिन्न साधन का अभाव है। जिसप्रकार मोक्ष का कर्ता आत्मा से भिन्न अन्य कोई नहीं है, उसीप्रकार उस मोक्ष का कारण (साधन) भी वास्तव में आत्मा से भिन्न नहीं है। प्रज्ञा अर्थात् राग से पृथक् होकर अंतरोन्मुख ज्ञान कि जो आत्मा से अभिन्न है, वही मोक्ष का सच्चा साधन है। इस साधन द्वारा ही आत्मा बंधन को छेद सकता है। इसके सिवा जो भेदरूप व्यवहार साधन, उसके द्वारा सचमुच बंधन का छेदन नहीं होता। उस व्यवहार के साधन में अटकने से तो राग की उत्पत्ति और बंधन होता है। जिसके आश्रय से बंधन हो, वह स्वयं मोक्ष का साधन कैसे हो सकेगा?—नहीं हो सकता। बंध को आत्मा से पृथक् करनेवाला ज्ञान ही मोक्ष का कारण होता है। व्यवहार के आश्रय से जो मोक्ष का साधन मानते हैं, उन्होंने मोक्ष के साधन की सच्ची मीमांसा नहीं की है; गंभीर विचारणा नहीं की है, छिछला—ऊपरी विचार किया है; वे शास्त्र के मर्म तक नहीं पहुँचे हैं। भाई, संतों का हार्द और शास्त्रों का मर्म तो यह है कि—आत्मा के मोक्ष का साधन आत्मा के ही आश्रित होता है, दूसरे के आश्रित नहीं होता।

जो राग को मोक्ष का साधन मानता है, वह राग में ही मोक्ष का साधन ढूँढ़ता है; परंतु राग तो बंध का साधन है, उसमें मोक्ष का साधन कहाँ से मिलेगा? राग को मोक्ष का साधन माननेवाला सचमुच उस राग को आत्मस्वभाव से अभिन्न मानता है; तो जिसे अपने से अभिन्न माने, उससे स्वयं पृथक् कैसे होगा? और राग से जो पृथक् न हो, वह मोक्ष कहाँ से प्राप्त करेगा? इसलिये हे भाई! तू गंभीर विचारणा करके सच्चे साधन की खोज कर। पहली बात तो यह है कि—कर्ता का साधन निश्चय से कर्ता से भिन्न

नहीं होता। मोक्ष का कर्ता तू है—तो तुझसे भिन्न साधन नहीं हो सकता... वह साधन कौन सा है?—रागादि बंधभावों का सर्व ओर से छेदन करनेवाली और समस्त चैतन्य भावों को अंगीकार करनेवाली ऐसी जो वीतरागी ज्ञान परिणति, भगवती प्रज्ञा, वह बंध को छेदने में तेरा साधन है। उस साधन द्वारा ही आत्मा बंधन को छेदने की क्रिया करता है।

— शरीर में साधन को ढूँढ़ना नहीं।

— राग में साधन को ढूँढ़ना नहीं।

— राग में एकमेक जो ज्ञान, उसमें भी साधन को ढूँढ़ना नहीं।

— शरीर से पार, राग से पार, ऐसे चैतन्य भाव में ही अपने साधन को ढूँढ़ना।

— शरीर तो चेतना रहित है, उसमें मोक्ष साधन नहीं है।

— राग भी चेतक स्वभाव से विरुद्ध भाव है; उसमें भी मोक्ष का साधन नहीं है।

— उपयोग स्वरूप आत्मा को समस्त रागादिभावों से भिन्न जाननेवाली जो प्रज्ञा, वह आत्मस्वभाव से अभिन्न वर्तती हुई, आत्मा के मोक्ष का साधन होती है; इसलिये ऐसी प्रज्ञाछैनी को अंतर में एकाग्र होकर इसप्रकार पटकना चाहिये कि बंधभाव आत्मा से अत्यंत भिन्न हो जायें। इस 'प्रज्ञा' को भगवती कहकर आचार्यदेव उसकी महिमा प्रगट की है।

इस भगवती प्रज्ञा द्वारा आत्मा और बंध अवश्य पृथक् हो जाते हैं। अंतर में ऐसा साधन करे और कार्यसिद्धि न हो, ऐसा नहीं हो सकता। कोई कहे कि हमने बहुत काल तक अभ्यास किया परंतु कोई कार्यसिद्धि तो हुई नहीं? तो—आचार्यदेव कहते हैं कि—भाई! सच्चे साधन को (भगवती प्रज्ञारूप साधन को) तूने नहीं जाना और अन्य साधन माना है; क्योंकि वह भगवती प्रज्ञा तो ऐसा अमोघ साधन है कि उसके द्वारा बंध और आत्मा की भिन्नता अवश्य होती ही है।

साभार : आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष -22, अंक-1

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

प्रथम अधिकार का सार

सर्वज्ञ भगवान ने आत्मा का वास्तविक स्वरूप कैसा कहा है यह जानने के लिए प्रथम भूमिका में नय के विचार होते हैं और वह स्वभाव-विभाव को भिन्न पहिचानने में सहायक भी है; परन्तु उन्हीं के विचारों में रुका रहे तो अभेद वस्तु का अनुभव नहीं होता। अतः नय के कल्लोलों को बाधक कहा है। जैसे बाजार में मिठाई लेने जाते हैं तो पहले भाव पूछते हैं, तोल वगैरह बराबर है या नहीं -यह देखते हैं इत्यादि सब होता है; परन्तु जब मिठाई खाने बैठते हैं, तब ये कोई विचार नहीं करते, मिठाई का ही स्वाद लेते हैं।

भगवान! तेरी महिमा का पार नहीं है, परन्तु तुझको उसकी सुध नहीं पड़ती है।

मिठाई लेने जाए वहाँ सीधा खाने लगे तो व्यापारी खाने देगा?पहले भाव तो पूछ और कितनी लेनी है, यह कह तो थोड़ासा दूँ फिर खा-ऐसा कहेगा। उसीप्रकार पहले सर्वज्ञ भगवान द्वारा कथित वस्तुस्वरूप ज्ञान में ले और समझे कि जो अज्ञानी कहते हैं वह स्वरूप मिथ्या है। वीतराग सर्वज्ञदेव कहते हैं, वही स्वरूप सत्य है ऐसा पहले विचारसहित निर्णय करे; फिर अनुभव हो, उसमें वस्तु का स्वाद आवे, तब विकल्प नहीं रहते।

स्वानुभूति में नय और निक्षेप नहीं होते। 'उदयति नयश्री' नय अर्थात् वस्तु के एक-एक धर्म को बतानेवाला ज्ञान का अंश, प्रमाण अर्थात् सम्पूर्ण वस्तु को बतानेवाला ज्ञान और निक्षेप अर्थात् जानने योग्य चीज कि जो नामरूप, स्थापनारूप, द्रव्यरूप और भावरूप है। इन तीनों (प्रमाण-नय-निक्षेप) से पहले ज्ञान में वस्तु का स्वरूप जानना चाहिए।

जैसे अंधकार में भी गुड़ खाये तो मीठा ही लगता है, परन्तु अँधेरे में गुड़ की जगह गोबर आ जाये तो मीठा कैसे लगेगा?उसीप्रकार पहले वीतराग द्वारा कथित तत्व जैसा है, वैसा बराबर समझा होगा तो अनुभव में भी ऐसा ही

आयेगा; परन्तु पहले समझने में ही भूल होगी तो वस्तु का अनुभव नहीं होगा। इसलिए सर्वप्रथम भगवान द्वारा कथित द्रव्य-गुण-पर्याय और अज्ञानी द्वारा कथित द्रव्य-गुण-पर्याय तथा धर्म के स्वरूप में क्या अन्तर है -यह समझकर यथार्थस्वरूप को ग्रहण करना चाहिए। कारण कि आत्मा की बातें तो एक नास्तिक के अलावा सभी करते हैं; परन्तु सर्वज्ञ वीतराग द्वारा कहे गये अनन्त जीव और उसका वास्तविक स्वरूप अन्यत्र कहीं नहीं है। उस स्वरूप को यथार्थरूप से समझकर हमेशा उसके विचार और चिन्तवन में लगे रहना चाहिए।

जो 'मुझे तो यह निश्चय-व्यवहार आदि सब आता है' -ऐसा मानता है उसको ज्ञान का अजीर्ण हो गया है। 'आता है' तो तब कहलाये कि जब अखण्ड निर्विकल्प आत्मा का ज्ञान हो।

अरे! जीव अनादिकाल से निजनिधान के भान बिना दु:खी हो रहा है। सर्वज्ञ कथित वस्तु के भान बिना सम्प्रदाय के बाड़े में रहनेवाले भी प्यासे ही चले जाते हैं। सरोवर किनारे हिरण प्यासे रे लाल...जैन के बाड़े में रहने पर भी प्यासे चले जाते हैं। दौड़े, हाँफे चमकीले जल के काज...विकल्प की जाल यह चमकीली रेत में पानी मानने जैसा है। भाई! उससे प्यास नहीं बुझेगी। इसलिए प्रथम नय-निक्षेप और प्रमाण से द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप समझकर आत्मा के अन्दर जाना-अनुभव करना।

आहा..हा! जब आत्मा की धुन लगे, तब झुकाव बारम्बार आत्मा की तरफ ही रहा करता है। अन्तर में आत्मा की ऐसी धुन लगे, तब आत्मा का अनुभव और सम्यग्दर्शन होता है। ऐसी बात है बापू!

इस प्रकार यह जीवद्वार पूर्ण हुआ।

अजीवद्वार

अजीव अधिकार वर्णन करने की प्रतिज्ञा

जीव तत्त्व अधिकार यह, कह्यौ प्रगट समुझाय।
अब अधिकार अजीवकौ, सुनहु चतुर चित्त लाय।।1।।

अर्थः- यह पहला अधिकार जीवतत्त्व का समझाकर कहा, अब अजीवतत्त्व का अधिकार कहते हैं, हे विद्वानो ! उसे मन लगाकर सुनो।।1।।

काव्य - 1 पर प्रवचन

अब अजीव अधिकार के वर्णन करने की प्रतिज्ञा करते हैं-

बनारसीदासजी कहते हैं कि जीव का अधिकार प्रकट समझाकर कहा। अब अजीव तत्त्व का अधिकार कहते हैं। उसको हे विद्वानो ! अर्थात् चतुर पुरुषो ! मन लगाकर सुनो।

मंगलाचरण-भेदविज्ञान द्वारा प्राप्त पूर्णज्ञान की वंदना

परम प्रतीति उपजाय गनधरकीसी,
अंतर अनादिकी विभावता विदारी है।
भेदग्यान दृष्टिसौं विवेककी सकति साधि,
चेतन अचेतनकी दसा निरवारी है ।।
करमकौ नासकरि अनुभौ अभ्यास धरि,
हिएमैं हरखि निज उद्धता सँभारी है।
अंतराय नास भयौ सुद्ध परकास थयौ,
ग्यान कौ विलास ताकौं वंदना हमारी है ।।2।।

अर्थः- गणधर स्वामी जैसा दृढ़ श्रद्धान उत्पन्न करके, अनादि काल से लगे हुए अन्तरंग का मिथ्यात्व नष्ट किया और भेदज्ञान की दृष्टि से ज्ञान की शक्ति सिद्ध करके जीव-अजीव का निर्णय किया, पश्चात् अनुभव का अभ्यास करके कर्मों को नष्ट किया तथा हृदय में हर्षित होकर अपनी उत्कृष्टता को सम्हाला, जिससे अंतरायकर्म नष्ट हुआ और शुद्ध आत्मा का प्रकाश अर्थात् पूर्णज्ञान का आनंद प्रगट हुआ। उसको मेरा नमस्कार है।।2।।

काव्य - 2 पर प्रवचन

अब मंगलाचरण में भेद विज्ञान द्वारा प्राप्त पूर्ण ज्ञान को वंदन करते हैं-

'परम प्रतीति उपजाय गणधर कीसी' -अनन्त गुणधाम-अनन्तगुण

विश्राम आत्मा के सन्मुख होकर और विकल्प से विमुख होकर जिसने सम्यक्त्व प्राप्त किया है वह भी कैसा है ? कि गणधर जैसा अगाढ़ सम्यक्त्व, कि जिसमें अजीव से भिन्न जीवस्वभाव के सन्मुख होकर परम प्रतीति-दृढ़ श्रद्धान किया है। भगवान कहते हैं, इसलिए आत्मा ऐसा है -ऐसी प्रतीति नहीं, परन्तु स्वसंवेदन से आत्मा के अनुभवपूर्वक प्रतीति उत्पन्न हुई और अनादिकाल से लगा हुआ अन्तर का मिथ्यात्व नष्ट किया है। 'अंतर अनादि की विभावता विदारी है' में मिथ्यात्व को विभाव कहा है। श्रीमद् में भी आता है न-

'कोटि वर्ष का स्वप्न भी, जाग्रत होत समाय ।
त्यौं विभाव अनादि का, ज्ञान होत दूर थाय ।।'

इस पद में भी मिथ्यात्व के अर्थ में विभाव शब्द का प्रयोग किया है। अनादि से पर और पुण्य-पापभाव मेरे हैं और वे मुझे लाभदायक हैं ऐसा जो मिथ्यात्वभाव था; उसको अन्तर आत्मदृष्टि द्वारा विदार दिया है, व्यय किया है और सम्यक् श्रद्धा उत्पन्न की है। ध्रुव तो त्रिकाली ज्ञायकभाव है। जिसको निरंतर उसका आश्रय वर्तता है, उसको समकिती, ज्ञानी अथवा धर्मी कहते हैं।

तीर्थंकर के वजीर ऐसे गणधर जैसी दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न करके, अनादिकाल से लगा हुआ मोह-अन्तरंग मिथ्यात्व नष्ट किया है और भेदज्ञान की शक्ति को सिद्ध करके जीव-अजीव का निर्णय किया है। अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव वह जीव और पुण्य-पापभाव वह अजीव तत्व है। इन दोनों को भिन्न पाड़कर, गणधर जैसी परम प्रतीति उपजाकर 'अन्तर अनादि की विभावना विदारी है' -अनादि का जो मोह, उससे स्वयं भिन्न पड़कर स्वरूप का अनुभव करता है। अनादि से विभाव में एकता बुद्धि थी, वह तोड़ दी-नष्ट कर दी है।

देखो, यही करने का है। अजीव से अपने जीव को भिन्न प्रतीति में लेकर अनादि का मोह नष्ट करना है; क्योंकि अपना स्वभाव सुखरूप है और

अजीव, ऐसे जो पुण्य-पाप भाव वे दु:खरूप हैं, आकुलता है; इसलिए उनसे भेदज्ञान करने योग्य है। मैं तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप हूँ। यह बात कोई अलौकिक और अपूर्व है। निज स्वभाव की दृष्टिपूर्वक अजीवरूप पर और राग से भिन्न अपने को भिन्न पाड़कर 'भेदज्ञान दृष्टि सौं विवेक की सकति साधि' -चैतन्य का अनुभव करना। इस अनुभव का बारम्बार अभ्यास करने से कर्मों का नाश होता है। अज्ञानपूर्वक उपवास आदि के कष्ट करने से कर्मों का नाश नहीं होता है।

अन्तर में चैतन्य के दलरूप भगवान आत्मा विद्यमान है; परन्तु इसको अपना पूर्ण स्वरूप विश्वास में नहीं आता है। अनादि से राग-द्वेष-मोह और अल्पज्ञपने के जोर में इसकी दृष्टि पूर्णस्वरूप भगवान आत्मा पर नहीं जाती।

'हिए मैं हरखि निज उद्धता सँभारी हैं, उद्धता अर्थात् उत्कृष्ट, सर्वोत्कृष्ट जो ज्ञानानन्द स्वभाव, उसका अनुभव करके, हृदय में हर्षित होकर अपनी उत्कृष्टता सँभाली, जिससे अन्तरायरूप कर्म नाश हुआ और शुद्धात्मा का प्रकाश अर्थात् पूर्ण ज्ञान और आनन्द प्रगट हुआ है। जो स्वरूप की प्राप्ति में विघ्नरूप था -ऐसा राग नष्ट होने पर शुद्धज्ञान का प्रकाश हुआ। जगमग ज्योतिस्वरूप चैतन्य भगवान जागृत हुआ। जहाँ आनन्द सहित ज्ञान की शुद्धता प्रकट हुई। ऐसे ज्ञान को मेरा नमस्कार हो। जो अपनी ज्ञान की ऋद्धि और स्मृद्धि से उछला और दशा में पूर्ण ज्ञानानन्द प्रकट हुआ, उस ज्ञान के विकास को मेरा वंदन है।

अज्ञानी को प्रौषध और प्रतिक्रमण करना सरल लगता है; परन्तु यह बात समझना कठिन हो गई है। प्रतिक्रमण माने विभाव से पराङ्मुख होकर स्वभाव में ठहरना; परन्तु अभी स्वयं जागृत हुए बिना विभाव से वापिस कैसे मुड़े ?वस्तुत: प्रकटरूप परमात्मा और शक्तिरूप निजात्मा में कोई अन्तर नहीं है। यह बात सर्वप्रथम समझने योग्य है।

यह तो अजीव अधिकार है न..! पुण्य-पाप के अजीवभाव से भिन्न

पड़कर स्वभाव की शरण लेता है वहाँ अन्दर से ज्ञान का विलास प्रकट होता है। जहाँ तक यह अजीवरूप पुण्य-पाप के विलास में था, वहाँ तक इसको दु:ख का वेदन होता था। उनसे भिन्न पड़कर जैसा स्वयं है, वैसा अनुभव करने पर आनन्दित होकर आनन्द का अनुभव करता है। कोई ऐसा कहता है कि बहुत उपवासादि कष्ट सहन करे, पानी की बूँद भी नहीं पिये, धूप में बैठे; उसको अधिक धर्म होता है; परन्तु ऐसा नहीं होता है। कष्ट सहने में आकुलता है, उससे धर्म और आनन्द कैसे हो सकता है? धर्म तो आनन्दपूर्वक होता है, उसमें दु:ख नहीं होता है। अजीव-रागादि से भिन्न पड़कर आत्मा का अनुभव करते-करते राग का अत्यन्त अभाव होकर अकेली चैतन्यज्योति जागृत हो जाती है, उसको पूर्ण ज्ञानानन्दरूप धर्म प्रकट हुआ -ऐसे पूर्ण ज्ञानी परमात्मा को मैं वंदन करता हूँ- आदर करता हूँ।

क्रमश:

पृष्ठ 10 का शेष....

तीर्थंकर महावीर

लोक की उपासना को लोक वासना छोड़ो

भारतीय संस्कृति उस महानदी के समान है जिसमें नाना विचार प्रवाह मिलते हैं और जिससे निकलते भी हैं, पर जो लोक में हमेशा बहती रहती है, उसके तट पर कई तीर्थ बने और मिटे, तीर्थंकर महावीर ने भी लगभग ढ़ाई हजार वर्ष पहिले एक सर्वोदय तीर्थ की रचना की थी, भले ही वह आज समय के प्रवाह में बिखरा प्रतीत हो, पर उसके निर्माण की कला अमिट है, और कोई चाहे तो धर्म तीर्थ के निर्माण में उसका उपयोग कर सकता है। उसकी यह कला थी कि लोक की उपासना के लिये लोक की वासना छोड़ दो, साधना द्वारा अपने आपको इतना सरल बनाओ कि लोक में घुल-मिल सको, युग की आस्तिकता के अनुसार समन्वय दृष्टि में ऐसे आदर्श चुनो और उन्हें जीवन में ढालो कि तुम्हारा जीवन भावी समाज की जीवन पद्धति का आधार बन जाये।

जैन मन्दिर, मोरबी

बढ़वान में आदरणीय बज्जूभाई द्वारा मंगलार्थी छात्रों को प्रेरणा

चैतन्यधाम में
जिनपूजन का
लाभ लेते हुए

सुरेन्द्रनगर में
भक्ति का
कार्यक्रम

मथुरा चौरासी
की झलक

सोनगढ़ में समस्त
ट्रस्टियों द्वारा
परिचय

बहिनश्री की
तत्त्वचर्चा

गुरुदेवश्री का जन्मस्थान

उमराला में गुरुदेवश्री का संग्रहालय

जैनमन्दिर, लींबड़ी

बोटाद जैन मन्दिर में
जिनेन्द्र भक्ति

जिनशासन
प्रभावना रैली,
उमराला

आशाबेन द्वारा
परिचय प्राप्त
करते हुए
मंगलार्थी

आदरणीय
हेमन्तभाईजी
गाँधी के
आवास पर

श्री हसमुखभाईजी
के साथ चर्चा

अकम्पनाचार्य की अडिगता... विष्णुकुमार की वत्सलता

निर्दोष वात्सल्य का प्रतीक रक्षाबंधन का पर्व जैनों का एक महान ऐतिहासिक पर्व है। 700 मुनिवरों की रक्षा का और धर्म रक्षण की महान वात्सल्य भावना का प्रसंग इस पर्व के साथ जुड़ा हुआ है। यह प्रसंग हस्तिनापुरी में बना था। पहिले अकम्पनाचार्य 700 मुनियों के संघ सहित उज्जैन नगरी में पधारे, दुष्ट मंत्रियों के साथ राजा उनकी वंदना करने जब गया, तब अवसर का विचार कर आचार्य ने संघ को मौन धारण करने का आदेश दिया। इसमें संघरक्षा का वात्सल्य दिखलाई देता है। दो मुनियों ने जो बाहर रह गये थे और जिन्हें आचार्य की आज्ञा का ज्ञान नहीं था—मंत्रियों को वाद-विवाद में चुप करा दिया, जिससे वे ईर्षावान मंत्री रात्रि को मुनियों पर प्रहार करने के लिये तैयार होते हैं, तब जैनधर्म का भक्त यक्षदेव उनकी रक्षा करके भक्तिभरा वात्सल्य प्रगट करता है।

बाद में इन 700 मुनियों का संघ हस्तिनापुर में आता है, और अपमानित हुए मंत्री (बलिराजा वगैरे) घोर उपद्रव करते हैं... यह उपसर्ग दूर न हो, तब तक अन्न जल का त्याग कर हस्तिनापुर के श्रावकजन धर्मात्माओं के प्रति महान वात्सल्य और परम भक्ति व्यक्त करते हैं। दूसरी ओर मिथिलापुरी में आचार्य श्रुतसागर भी मुनिवरों के ऊपर होते हुए उपसर्ग को देखकर नहीं रह पाते और तीव्र वत्सलता के कारण मौन टूटकर 'हा...' ऐसा उद्‌गार उनके मुँह से निकल जाता है। महान ऋद्धिधारक मुनिराज विष्णुकुमार सब बातें जानकर वात्सल्य भाव से प्रेरित होते हैं और युक्तिपूर्वक 700 मुनिवरों की रक्षा करते हैं... हस्तिनापुर में जय-जयकार की तुमुल ध्वनि होती है.... बलिराजा भी माफी माँगकर जैनधर्म का श्रद्धालु बनता है। विष्णुकुमार पुनः मुनि होकर केवलज्ञान प्राप्त करते हैं।

— वात्सल्य का महान दिवस—अर्थात् श्रावण सुदी पूनम —

आत्मा कैसे ज्ञात हो ?

[जिज्ञासु शिष्य के हृदय का प्रश्न; और आत्मानुभव की तीव्र लगन]

[परमात्मप्रकाश प्रवचन]

* आत्मा कैसे ज्ञात हो ?

  आत्मा की ओर से ज्ञान से आत्मा अनुभव में आता है।

* आत्मा की ओर का ज्ञान कैसा है ?

  आत्मा की ओर का ज्ञान राग रहित, वीतराग स्वसंवेदनरूप है।

* आत्मा कैसा है ?

  आत्मा देहादि से परे, विकल्पों से दूर सदा ज्ञानानंदस्वरूप है। जैसे सिद्ध भगवान हैं वैसे ही स्वभाव से परिपूर्ण आत्मा है। ऐसे आत्मस्वरूप का स्वसंवेदन करने पर ही आत्मा सम्यक्रूप से ज्ञात होता है। परोन्मुख या रागादि भावों से आत्मा अनुभव में नहीं आता।

प्रभाकर भट्ट अर्थात् आत्मज्ञान का जिज्ञासु शिष्य कहता है कि—हे स्वामी! जिस ज्ञान से यह आत्मा मुझे शीघ्र ज्ञात हो ऐसा ज्ञान मुझमें प्रकाशित कीजिये; इसके अतिरिक्त अन्य अनेक परभावों से या ज्ञातृत्व से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। मुझे अपने आत्मा का अनुभव हो इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ मुझे नहीं चाहिये। इसलिये क्षणमात्र में वह अनुभव कैसे हो वह मुझे बतलाइये—

ज्ञानं प्रकाशय परमं मम किं अन्येन बहुना।
येन निजात्मा ज्ञायते स्वामिन एक क्षणेन॥१०४॥

आत्मा के ज्ञान की अनुभूति के सिवा समस्त बाह्य वृत्तियों का माहात्म्य जिसे उड़ ही गया है, अरे, बिना आत्मज्ञान के जीव को संसार में कहीं पर

भी जरा भी सुख नहीं है। आनंद की प्राप्ति आत्मज्ञान के द्वारा ही होती है, इसप्रकार अंतर में विचार करके विनयपूर्वक गुरु के पास उसी की माँग करता है कि—हे स्वामी! मुझे दूसरे विकल्पों का कुछ प्रयोजन नहीं है, मुझे तो आत्मज्ञान जिसप्रकार प्रगट हो वही उद्यम करना है। इसलिये शीघ्र आत्मज्ञान-स्वात्मानुभूति हो ऐसा उत्तम उपदेश दीजिये।

देखो, यह शिष्य की जिज्ञासा! जगत की दूसरी जिज्ञासा छोड़कर जिसे आत्मज्ञान की जिज्ञासा जगी उसके अंतर में से ऐसा प्रश्न उठता है; अर्थात् शुद्धात्मा के सिवा मुझे दूसरा कुछ भी सुहाता नहीं। एक ही लगन-रट लगी है कि मैं मेरी आत्मा को जान लूँ—अनुभव करूँ, और वह भी क्षणमात्र में जान सकूं—इसप्रकार तीव्र लगन है।

ऐसे आत्माभिलाषी शिष्य को समझाते हैं कि हे शिष्य जो ज्ञान है उसे ही तू आत्मा जान। आत्मा ज्ञान प्रमाण है। यहाँ 'ज्ञान' कहने पर उसमें रागादि परभाव न आवें; यह समस्त पदार्थों को जाननेवाला जो ज्ञान है, वह ज्ञान किसका है ? ज्ञान में कौन व्यापक हो रहा है ? ज्ञान में व्यापक जो पदार्थ वही आत्मा है, वही तू है। ज्ञान के साथ जिसे नित्य तन्मयता है वही आत्मा है ऐसा जान। 'ज्ञान' को लक्ष में लेने पर क्षणमात्र में आत्मा ज्ञात होता है, उसमें एकदम निराकुल शांति और अतीन्द्रिय आनंद का वेदन है। ज्ञान से भिन्न आत्मा नहीं है। रागरहित आत्मा अनुभव में आता है, किंतु ज्ञानरहित आत्मा कभी अनुभव में आता नहीं। इसप्रकार ज्ञान स्वरूप आत्मा एक क्षण में अंतर्दृष्टि से देखा जाता है। इसप्रकार ज्ञानस्वरूप स्वयं आत्मा अपसे ज्ञानस्वभाव के द्वारा अनुभव में आता है। ऐसा अनुभव अतीन्द्रिय आनंद सहित होता है। परभाव का अभ्यास छोड़कर स्वभाव के अभ्यास के द्वारा ऐसा अनुभव होता है। ज्ञान को परभाव से प्रथम श्रद्धा में भिन्न करे और प्रगट अनुभव करने के लिये ज्ञान को अंतरोन्मुख करने से क्षणमात्र में आत्मस्वभाव प्रगट अनुभव में आता ही है।

गतांक से आगे

श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान का स्वरूप

श्रुत के पर्यायवाची

श्रुत के पर्यायवाची का वर्णन करते समय आचार्य वीरसेनस्वामी अपनी धवला टीका में जिनागम की प्रकृष्टता को सिद्ध करते हुए उसके पर्यायवाची देते हैं, जो इस प्रकार हैं — पूर्वापर विरोधादि दोष से रहित होने के कारण, निरवद्य अर्थ का कथन करने के कारण और विसंवादरहित होने के कारण प्रकृष्टता है।

प्रवचन, प्रवचनीय, प्रवचनार्थ, गतियों में मार्गणता, आत्मा, परम्परा लब्धि, अनुत्तर, प्रवचन, प्रवचनी, प्रवचनाद्धा, प्रवचन सन्निकर्ष, नयविधि, भंगविधि, भंगविधि विशेष, पृच्छाविधि, पृच्छाविधि विशेष, तत्त्व, भूत, भव्य, भविष्यत, अवितथ, अविहद, वेद, न्याय, शुद्ध, सम्यग्दृष्टि, हेतुवाद, नयवाद, प्रवरवाद, मार्गवाद, श्रुतवाद, परवाद, लौकिकवाद, लोकोत्तरीयवाद, अग्रय, मार्ग, यथानुमार्ग, पूर्व, यथानुपूर्व और पूर्वातिपूर्व—ये श्रुतज्ञान के पर्याय नाम हैं।

ये श्रुतज्ञान के इकतालीस पर्याय शब्द हैं। यथा—'वच्' धातु से वचन शब्द बना है। **'उच्यते भण्यते कथ्यते इति वचनम्'**—इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो कहा जाता है, वह वचन है। इस प्रकार वचन पद से शब्दों का समुदाय लिया जाता है। प्रकृष्ट वचन को प्रवचन कहते हैं।

प्रावचन—प्रवचन अर्थात् प्रकृष्ट शब्द-कलाप में होनेवाला ज्ञान या द्रव्यश्रुत प्रावचन कहलाता है।

प्रवचनीय—प्रबंधपूर्वक जो वचनीय अर्थात् व्याख्येय या प्रतिपादनीय होता है, वह प्रवचनीय है।

प्रवचनार्थ—द्वादशांगरूप वर्णों का समुदाय वचन है, **'अर्यते गम्यते परिच्छद्यते इति अर्थः'** अर्थात् जो जाना जाता है, वह अर्थ है। यहाँ अर्थ पद से नौ पदार्थ लिये गये हैं। वचन और अर्थ—ये दोनों मिलकर वचनार्थ

कहलाते हैं। जिस आगम में वचन और अर्थ—ये दोनों प्रकृष्ट अर्थात् निर्दोष हैं, उस आगम की प्रवचनार्थ संज्ञा है।

गतियों में मार्गणता—यतः गति शब्द देशामर्शक है, अतः गति शब्द का ग्रहण करने से चौदहों मार्गणास्थानों का ग्रहण होता है। गतियों में अर्थात् मार्गणास्थानों में चौदह गुणस्थानों से उपलक्षित जीव जिसके द्वारा खोजे जाते हैं, वह गतियों में मार्गणता नाम श्रुति है।

आत्मा—द्वादशांग का नाम आत्मा है, क्योंकि वह आत्मा का परिणाम है और परिणाम परिणामी से भिन्न नहीं होता है, क्योंकि मिट्टी द्रव्य से पृथग्भूत घटादि पर्याय नहीं पायी जाती।

परम्परा लब्धि—मुक्तिपर्यन्त इष्ट वस्तु को प्राप्त करनेवाली अणिमा आदि विक्रियाएँ लब्धि कही जाती है। इन लब्धियों की परम्परा जिस आगम से प्राप्त होती है या जिसमें उनकी प्राप्ति का उपाय कहा जाता है, यह परम्परा लब्धि अर्थात् आगम है।

अनुत्तर—उत्तर प्रतिवचन का दूसरा नाम है, जिस श्रुत का उत्तर नहीं है, वह श्रुत अनुत्तर कहलाता है। अथवा उत्तर शब्द का अर्थ अधिक है, इससे अधिक चूँकि अन्य कोई भी सिद्धांत नहीं पाया जाता, इसलिए इस श्रुत का नाम अनुत्तर है।

प्रवचन—यह प्रकर्ष से अर्थात् कुतीर्थों के द्वारा नहीं स्पर्श किए जानेवाले स्वरूप से जीवादि पदार्थों का निरूपण करता है, इसलिए वर्ण पंक्त्यात्मक द्वादशांग को प्रवचन कहते हैं। अथवा इस ज्ञान के द्वारा प्रमाण आदि के अविरोधरूप से जीवादि अर्थ कहे जाते हैं, इसलिए द्वादशांग भावश्रुत को प्रवचन कहते हैं।

प्रवचनी—जिसमें प्रकृष्ट वचन होते हैं, वह प्रवचनी है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार भावागम का नाम प्रवचनी है। अथवा जो कहा जाता है, वह प्रवचन है—इस व्युत्पत्ति के अनुसार प्रवचन अर्थ को कहते हैं। वह इसमें है, इसलिए वर्णोपादान कारणक द्वादशांग ग्रंथ का नाम प्रवचनी है।

क्रमशः **साभार : स्वाध्याय का स्वरूप**

प्रेरक-प्रसंग

असली और नकली

बात वर्षों पहले की है। स्व. पण्डित जवाहरलाल नेहरू जब प्रधानमन्त्री थे, तब उनके पास कुछ प्रतिनिधि आये तथा श्रम– दान समारोह के उद्घाटन के लिए निमंत्रित किया। नेहरूजी ने डायरी देखी तथा उस दिन कहीं अन्यत्र जाना तो नहीं, यह देखकर उन लोगों से समय व स्थान की जानकारी लेकर 'हाँ' कर दी।

समय के पाबन्द नेहरूजी वहाँ पर पहुँच गये। समारोह में पहले से ही बड़ी संख्या में लोग वहाँ उपस्थित थे। नेहरूजी की कार को आते देख सभी जोर–जोर से नेहरूजी जिन्दाबाद के नारे लगे।

नेहरूजी वहाँ पहुँचे तो क्या देखते हैं कि उद्घाटन करना है, वहाँ एक लाल फीता बाँध रखा है तथा पास ही जमीन पर एक चाँदी की गेंती पड़ी है।

यह देखकर नेहरूजी ने तेज आवाज में कहा– गेंती तो लोहे कि होती है। मैं इससे श्रमदान नहीं करूँगा और फीते की भी श्रमदान में क्या आवश्यकता थी। थोड़ी दूर पर पड़ी लोहे की गेतियों में से नेहरूजी एक गेंती उठाकर ले आये तथा जमीन खोदनी शुरु कर दी। किसी की हिम्मत न हुई कि उन्हें लगातार आधे घण्टे तक श्रम करने तक कोई रोके।

तब एक वृद्ध सज्जन उनके पास गये व पसीने में तर–बतर नेहरूजी से कहा – श्रम–दान का उद्घाटन हो गया। अब आप विश्राम कीजिए।

इस पर नेहरूजी बोले – श्रम असली हुआ या नकली? यह सुनकर सब लोग हँस पड़े।

शिक्षा– केवल भाषण देना मात्र ही पर्याप्त नहीं है, अपितु कार्य में स्वयं लग जाना उससे भी ज्यादा श्रेष्ठ व प्रेरणास्पद है।

"जिस प्रकार–उसी प्रकार" में छिपा रहस्य

जिस प्रकार– रत्नों को साथ में लेकर सफर करने वाला हमेशा जागृत रहता है, चौकन्ना रहता है। ध्यान हमेशा रत्नों पर रहता है।

उसी प्रकार– आत्म रत्न को धारण करने वाले संत सदैव जाग्रत रहते है।

जिस प्रकार– वैद्य की शिक्षा को हंसी में टालना रोग को बढ़ाना ही है।

उसी प्रकार– धर्म गुरुओं की बात हंसी में टालने से संसार दुखों को बढ़ना ही है।

जिस प्रकार– रोगी के कपड़े बदलने से शरीर का दुख दूर नहीं होता, रोग दूर करना होता है।

उसी प्रकार– क्षेत्र बदलने से, काल बदलने से आत्मा का दुख दूर नहीं होता, आत्म रोग दूर करने होते है आत्म रोग हैं–मिथ्यात्व एवं कषाय।

जिस प्रकार– मेले में माँ की अंगुली छूटने पर बच्चा दुखी होता है। युवा होने पर माँ की अंगुली नहीं पकड़ी जाती है।

उसी प्रकार– गुरुओं की शरण छोड़ने पर जीव दुखी रहता है। अपनी शरण लेने पर गुरुओं की शरण सहज ही छूट जाती है।

जिस प्रकार– नल में से पानी नहीं आता, पानी तो पानी के श्रोत से ही आता है, नल तो माध्यम है।

उसी प्रकार– ज्ञान, इन्द्रियों से नहीं आता, ज्ञान तो ज्ञान के श्रोत आत्मा में से ही आता है, इन्द्रियाँ तो माध्यम है।

जिस प्रकार– हम सोचते है हमारे घर में चोर न घुस जाये। उसी प्रकार की सावधनी अपनाते है।

उसी प्रकार– सोचना चाहिए हमारे हृदय में मान न घुस जाये, क्रोध न घुस जाये, माया–लोभ न घुस जाये।

जिस प्रकार– जाने वाला और आने वाला व्यक्ति एक ही है।

उसी प्रकार– बाहर फिरने वाले उपयोग को ही अन्दर ले आओं ।

जिस प्रकार– दवा का न होना सौभाग्य की बात है।

उसी प्रकार– परिग्रह का न होना सौभाग्य की बात है जैसे सिद्धों को आत्म श्रद्धान होता है वैसे ही आत्म श्रद्धान चौथे गुणस्थान वाले को होता है।

क्रमशः **संकलन – प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की**

समाचार-दर्शन

सोनगढ़ यात्रा सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम मंगलायतन : प्रत्येक वर्ष की भांति इस वर्ष भी भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के छात्रों को पूज्य गुरुदेवश्री की साधनाभूमि सोनगढ़ एवं अन्य क्षेत्रों पर भी दर्शन हेतु ले जाया गया। इस वर्ष कक्षा आठ के ११, कक्षा ९ के १४ एवं ६ सीनियर विद्यार्थी कुल ३१ विद्यार्थियों ने यात्रा में भाग लिया। भूतपूर्व मंगलार्थियों में सुलभ जैन एवं मयंक जैन भी शामिल थे। यात्रा का संचालन पंडित सुधीर शास्त्री, मंगलार्थी समकित शास्त्री के द्वारा किया गया।

दिनांक २२ जून २०२२ को सभी मंगलार्थियों ने मथुरा चौरासी के दर्शन किये एवं वडोदरा की ओर प्रस्थान किया। बड़ोदरा से पावागढ़ पहुंचकर मंदिरजी में दर्शन पूजन करके रोपवे के माध्यम से पहाड़ पर ७ जिन मंदिरों के दर्शन किए।

वहां से रात्रि में स्वर्णपुरी सोनगढ़ की ओर प्रस्थान किया। सोनगढ़ पहुंचकर सुबह समस्त जिनेंद्र मंदिरों के दर्शन एवं पूजन की तथा गुरु कहान आर्ट म्यूजियम का भी अवलोकन किया। साथ ही सीडी प्रवचन, बहन श्री की तत्व चर्चा, पूजन, भक्ति, सोनगढ़ के विद्यार्थियों से परस्पर मिलन, स्टार ऑफ इंडिया के दर्शन आदि अनेक कार्यक्रमों के माध्यम से विद्यार्थियों ने सोनगढ़ में लाभ लिया। वहां से निकलकर गुरुदेव श्री के जन्मधाम उमराला में सभी विद्यार्थियों ने दर्शन, भक्ति की। उमराला के पश्चात लिमडी एवं बोटाद के जैन मंदिरों के दर्शन किए तथा जिनेंद्र भक्ति भी आयोजित की। वहां से बहनश्री के जन्मधाम बड़वान की ओर सभी ने प्रस्थान किया। बड़वान से सुरेंद्रनगर में भक्ति कार्यक्रम किया गया। वहां से निकलकर बहनश्री की सम्यक्त्व भूमि वाकानेर गए। वहां आदरणीय सुभाष भाई के द्वारा सभी मंगलार्थियों का भव्य स्वागत किया गया। पूरे भक्तिभाव के साथ वहां के जिनालय के दर्शन किए एवं छात्रों ने सांस्कृतिक कार्यक्रम की प्रस्तुति की। अगले दिन राजकोट में विद्यमान भव्य जिनालयों के दर्शन किए एवं विद्यार्थियों के ज्ञानवर्धन हेतु महात्मा गांधी म्यूजियम में भी भ्रमण किया। तत्पश्चात मोरबी में जिनेंद्र भक्ति एवं स्वाध्याय का लाभ लिया। वहां से निकलकर चैतन्यधाम की ओर प्रस्थान किया। वहां पर संगीतमय जिन पूजन, सीडी प्रवचन एवं यात्रा समापन समारोह का कार्यक्रम आयोजित किया गया। संपूर्ण सोनगढ़ यात्रा बहुत ही आनंदमय एवं मंगलमय रही।

संपूर्ण यात्रा में श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट हस्ते श्री हितेनभाई मुंबई एवं श्री अजीतकुमार जैन बड़ौदा से अहमदाबाद तक आठों दिन बस व्यवस्था का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ। साथ ही श्री हसमुखभाई, श्री दिलीपभाई उमराला, श्री राजाभाई बोटाद, श्री द्विजेश शाह सुरेंद्रनगर, श्री रमेशभाई बढवान, श्री सुभाषभाई वाकानेर, श्री वीरेंद्रभाई राजकोट, पंडित सुनीलजी राजकोट, श्री अजीतभाई मोरबी, श्री राजेशभाई,

श्री प्रतीकभाई चैतन्यधाम एवं पंडित श्री सचिन जैन शास्त्री चैतन्यधाम का भी विशेष सहयोग रहा। हम उनका बहुत आभार व्यक्त करते हैं।

तीर्थधाम मंगलायतन में विधान सम्पन्न

तीर्थधाम मंगलायातन : यहाँ गुना, जयपुर व इन्दौर से पधारे हुए साधर्मियों की भावना पर पण्डित राजकुमारजी द्वारा रचित शान्ति विधान का आयोजन दिनांक 27 जून 2022 को पण्डित अशोक लुहाड़िया, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, और मंगलार्थी दिव्य जैन ने सम्पन्न कराया। इस अवसर पर सम्पूर्ण मंगलायतन परिवार उपस्थित था। एवं विधानोपरान्त दो मंगलार्थी छात्रों के एक वर्ष का व्यय 21-21 हजार रुपये एवं विभिन्न मदों में विधान के उपलक्ष्य में आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ।

सासनी में विधान सम्पन्न

सासनी : छहढालाकार आध्यात्मिक कवि पण्डित दौलतरामजी की जन्मभूमि सासनी में पण्डित राजकुमारजी द्वारा रचित शान्तिविधान का आयोजन किया गया है। मंगलायतन के विद्वान मंगलार्थी समकित शास्त्री तथा अन्य मंगलार्थी छात्रों के सहयोग से मंगल विधान सम्पन्न हुआ।

पंच परमेष्ठी विधान सम्पन्न

जयपुर : तीर्थधाम मंगलायतन से श्री स्वप्निल जैन परिवार द्वारा करीब 70 लोगों का संघ ज्ञानतीर्थ पण्डित टोडरमल स्मारक पहुँचा और वहाँ पंच परमेष्ठी विधान का आयोजन किया गया। जिसमें डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल व श्री परमात्मप्रकाश भारिल्ल, पण्डित शान्तिकुमार पाटील, पण्डित पीयूष शास्त्री आदि उपस्थित थे।

वैराग्य समाचार

देहरादून : श्री चतरसेन जैन का देहपरिवर्तन शान्तपरिणामोंपूर्वक हो गया है। आप तीर्थधाम मंगलायतन की स्थापना से ट्रस्टी थे एवं देहरादून मुमुक्षु मण्डल के अध्यक्ष थे।

बरगी : श्री गुणमाला जैन का देहपरिवर्तन शान्तपरिणामोंपूर्वक हो गया है। आप धार्मिक, उत्साही व भद्रपरिणामी महिला थीं। आपका सम्पूर्ण परिवार तत्त्वज्ञान से जुड़ा हुआ है। आप पण्डित सुदीप शास्त्री की माताजी थीं।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हो—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

षट्खण्डागम ग्रन्थ की वाचना अनवरत प्रवाहित

तीर्थधाम मङ्गलायतन में प्रथम बार कीर्तिमान रचते हुए प्रथम श्रुतस्कन्ध '**षट्खण्डागम धवला टीका सहित**' वाचना का कार्यक्रम, मार्गशीर्ष पंचमी, शनिवार 5 दिसम्बर 2020 से करणानुयोग की विशेषज्ञ बालब्रह्मचारी कल्पनाबेन द्वारा अनवरत प्रारम्भ है। जिसकी प्रथम पुस्तक की वाचना का समापन 31 मार्च 2021 को; द्वितीय पुस्तक की वाचना का प्रारम्भ 01 अप्रेल से, समापन 08 जुलाई 2021 को; तृतीय पुस्तक की वाचना का प्रारम्भ 09 जुलाई 2021 तथा समापन 24 अक्टूबर 2021 को और चतुर्थ पुस्तक की वाचना का प्रारम्भ 25 अक्टूबर 2021 से 27 फरवरी 2022 को और पंचम पुस्तक की वांचना का 28 फरवरी 2022 से 24 अप्रेल 2022 तक भक्तिभावपूर्वक सम्पन्न हुई।

विद्वान बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर तथा सहयोगी भाई-बहिनों एवं मंगलायतन परिवार का भी लाभ प्राप्त हुआ।

सम्पूर्ण 16 पुस्तकों की वाचना निरन्तर तीर्थधाम मंगलायतन से प्रवाहित होती रहे, ऐसी भावना आदरणीय पवनजी जैन की थी। जिसमें क्रमशः...

छठवीं पुस्तक की वाचना 25 अप्रेल 2022 से प्रारम्भ

विद्वत् समागम - बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर एवं सहयोगी भाई-बहिनों तथा मंगलायतन परिवार का भी लाभ प्राप्त होता है।

दोपहर 01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन)	**षट्खण्डागम (धवलाजी)**	
रात्रि 07.30 से 08.30 बजे तक	मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय	
08.30 से 09.15 बजे तक	**समयसार ग्रन्थाधिराज के कलशों का व्याकरण के नियमानुसार शुद्ध उच्च्चारण सहित सामान्यार्थ**	

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,
Password - mang4321 के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

सत्पात्रोपगतं दानं सुक्षेत्रे गतबीजवत्।
फलाय यदपि स्वल्पं तद्कल्पाय कल्पते॥

अर्थात् सत्पात्र में गया हुआ दान अच्छे स्थान में बोये हुए बीज के समान सफल होता है।

संयम प्रकाश, उत्तरार्ध तृतीय किरण, पृष्ठ 521

मङ्गल वात्सल्य-निधि

सदस्यता फार्म

नाम .....

पता .....

..... पिन कोड .....

मोबाइल ..... ई-मेल .....

मैं **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** योजना की सदस्यता स्वीकार करता हूँ और मैं ..... राशि जमा करवाऊँगा / दूँगा।

हस्ताक्षर

- चौथाई ग्रास दान भी अनुकरणीय -

ग्रासस्तदर्धमपि देयमथार्धमेव,
तस्यापि सन्ततमणुव्रतिना यथर्द्धिः।
इच्छानुसाररूपमिह कस्य कदात्र लोके,
द्रव्यं भविष्यति सदुत्तमदानहेतुः॥

अर्थात् गृहस्थियों को अपने धन के अनुसार एक ग्रास अथवा आधा ग्रास अथवा चौथाई ग्रास अवश्य ही दान देना चाहिए। तात्पर्य यह है कि हमें ऐसा नहीं समझना चाहिए कि जब मैं लखपति या करोड़पति हो जाऊँगा, तब दान दूँगा; बल्कि जितना धन हमारे पास है, उसी के अनुसार थोड़ा-बहुत दान अवश्य देना चाहिए। - आचार्य पद्मनन्दि : पद्मनन्दि पञ्चविंशतिका, श्लोक 230

यह राशि आप निम्न प्रकार से हमें भेज सकते हैं -

1. बैंक द्वारा

NAME	:	SHRI ADINATH KUNDKUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST, ALIGARH
BANK NAME	:	PUNJAB NATIONAL BANK
BRANCH	:	RAILWAY ROAD, ALIGARH
A/C. NO.	:	1825000100065332
RTGS/NEFTS IFS CODE	:	PUNB0001000
PAN NO.	:	AABTA0995P

UPI
BHIM UPI Payments Accepted at
SHRI ADINATH KUND KUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST

Account Number : 1825000100065332, IFSC Code: PUNB0001000

2. Online : http://www.mangalayatan.com/online-donation/
3. ECS : Auto Debit Form के माध्यम से।

तीर्थधाम मंगलायतन से प्रकाशित एवं उपलब्ध साहित्य सूची

मूल ग्रन्थ–

1. समयसार वचनिका
2. प्रवचनसार (हिन्दी, अंग्रेजी)
3. नियमसार
4. इष्टोपदेश
5. समाधितंत्र
6. छहढाला (हिन्दी, अंग्रेजी सचित्र)
7. मोक्षमार्ग प्रकाशक
8. समयसार कलश
9. अध्यात्म पंच संग्रह
10. परम अध्यात्म तरंगिणी
11. तत्त्वज्ञान तरंगिणी
12. हरिवंशपुराण वचनिका
13. सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन

1. प्रवचनरत्न चिन्तामणि
2. मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन
3. प्रवचन नवनीत
4. वृहद्द्रव्य संग्रह प्रवचन
5. आत्मसिद्धि पर प्रवचन
6. प्रवचनसुधा
7. समयसार नाटक पर प्रवचन
8. अष्टपाहुड़ प्रवचन
9. विषापहार प्रवचन
10. भक्तामर रहस्य
11. आतम के हित पंथ लाग!
12. स्वतंत्रता की घोषणा
13. पंचकल्याणक प्रवचन
14 मंगल महोत्सव प्रवचन
15. कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन
16. छहढ़ाला प्रवचन
17. पंचकल्याणक क्या, क्यों, कैसे?
18. देखो जी आदीश्वरस्वामी
19. भेदविज्ञानसार
20. दीपावली प्रवचन
21. समयसार सिद्धि
22. आध्यात्मिक सोपान
23. अमृत प्रवचन
24. स्वानुभूति दर्शन
25. साध्य सिद्धि का अचलित मार्ग
26. अहो भाव!

पण्डित कैलाशचन्द्रजी का साहित्य

1. जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला (भाग 1 से 7) (हिन्दी गुजराती)
2. मंगल समर्पण

अन्य

1. फोटो फ्रेम (पूज्य गुरुदेवश्री, बहिनश्री)

2. सी.डी.

3. मंगल भक्ति सुमन
4. मंगल उपासना
5. करणानुयोग प्रवेशिका
6. धन्य मुनिदशा
7. धन्य मुनिराज हमारे हैं!
8. प्रवचनसार अनुशीलन

बाल साहित्य (कॉमिक्स)

1. कामदेव प्रद्युम्न
2. बलिदान

आद. पवनजी की स्मृति में उपरोक्त साहित्य सभी मन्दिरों, ट्रस्ट, संस्थानों, विद्यालयों, पुस्तकालयों और साधर्मी भाई–बहिनों को स्वाध्यायार्थ निःशुल्क दिया जायेगा। सम्पर्क – सम्पर्कसूत्र – पण्डित सुधीर शास्त्री, 9756633800

Email : info@mangalayatan.com

– डाकखर्च आपका रहेगा।

चिदायतन सहयोग

-	परम शिरोमणी संरक्षक	रुपये 11.00 लाख
-	शिरोमणी संरक्षक	रुपये 05.00 लाख
-	परम संरक्षक	रुपये 02.00 लाख 51.00 हजार
-	संरक्षक	रुपये 01.00 लाख

तीर्थधाम चिदायतन संकुल में 206096.26 वर्ग फीट का निर्माण प्रस्तावित है। देव-शास्त्र-गुरु की उत्कृष्ट धर्मप्रभावना हेतु निर्मित हो रहे इस संकुल के निर्माण में आप एवं आपका परिवार, रुपये 2100.00 प्रति वर्ग फीट की सहयोग राशि प्रदान कर, तीर्थ निर्माण के सर्वोत्कृष्ट कार्य में सहभागी हो सकते हैं।

दानराशि में आयकर की छूट

भारत सरकार ने, श्री शान्तिनाथ-अकम्पन-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट को दान में दी जानेवाली प्रत्येक राशि पर, आयकर अधिनियम वर्ष 1961, 12-ए के अन्तर्गत धारा 80 जी द्वारा छूट प्रदान की गयी है।

नोट - आप अपनी राशि सीधे बैंक में जमा करा सकते हैं, अथवा निम्न नाम से Cheq./Draft भेज सकते हैं।

NAME	:	SHRI SHANTINATH AKAMPAN KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST, ALIGARH
BANK NAME	:	PUNJAB NATIONAL BANK
BRANCH	:	PARIYAVALI, ALIGARH
A/C. NO.	:	7969002100000194
RTGS/NEFTS IFS CODE	:	PUNB0796900

आप सभी सादर आमन्त्रित हैं

तीर्थधाम मङ्गलायतन में

वात्सल्य पर्व रक्षाबन्धन पर्व के अवसर पर

विशेष कार्यक्रम

श्रावण शुक्ल पूर्णिमा, शुक्रवार, 12 अगस्त 2022

कार्यक्रम

प्रात:	07.00 से 08.00 तक	प्रक्षाल-पूजन, विधान
	08.45 से 09.15 तक	पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन
	09.30 से 10.00 तक	स्वाध्याय (वात्सल्य पर्व कथा)
	10.00 से 10.30 तक	साधर्मी वात्सल्य कार्यक्रम
दोपहर	01.30 से 03.15 तक	वाचना (धवलाजी-ब्र. कल्पनाबेनजी)
सायं	06.30 से 07.00 तक	जिनेन्द्र भक्ति
रात्रि	07.15 से 08.30 तक	सांस्कृतिक कार्यक्रम (मंगलार्थी छात्रों द्वारा)
	07.30 से 09.15 बजे	मूलाचार- (ब्र. कल्पनाबेनजी) समयसार कलश उच्चारण

विनीत : श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़

कार्यक्रमस्थल:

तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़-आगरामार्ग, निकट हनुमान चौकी,
सासनी-204216 (अलीगढ़) फोन : **9756633800**

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2021-23

जङ्गल में भी मुनिराज परम सुखी

किसी को ऐसा लगे कि जङ्गल में मुनिराज को अकेले कैसे अच्छा लगता होगा? **अरे भाई! जङ्गल के बीच निजानन्द में झूलते मुनिराज तो परम सुखी हैं; जगत के राग-द्वेष का शोरगुल वहाँ नहीं है।** किसी परवस्तु के साथ आत्मा का मिलन ही नहीं है, इसलिए पर के सम्बन्ध बिना आत्मा स्वयमेव अकेला आप अपने में परम सुखी है। पर के सम्बन्ध में आत्मा को सुख हो —ऐसा उसका स्वरूप नहीं है। सम्यग्दृष्टि जीव अपने ऐसे आत्मा का अनुभव करते हैं और उसी को उपादेय मानते हैं।

(- गुरुदेवश्री के वचनामृत, १७६, पृष्ठ १०९)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक स्वप्निल जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। **सम्पादक :** डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

If undelivered please return to -

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust

Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)

Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22

info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com